1056

कृतिका

भाग 2

कक्षा 10 'अ' पाठ्यक्रम के लिए
हिंदी की पूरक पाठ्यपुस्तक

प्रतिज्ञापत्र

भारत मेरा देश है।
सभी भारतवासी मेरे भाई-बहन हैं।
मुझे अपने देश से प्यार है और इसकी समृद्धि तथा बहुविध परम्परा पर गर्व है।
मैं हमेशा इसके योग्य बनने का प्रयत्न करता रहूँगा।
मैं अपने माता-पिता, अध्यापकों और सभी बड़ों की इज्जत करूँगा एवं हरएक से नम्रतापूर्वक व्यवहार करूँगा।
मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अपने देश और देशवासियों के प्रति एकनिष्ठ रहूँगा।
उनकी भलाई और समृद्धि में ही मेरा सुख निहित है।

રાજ્ય સરકારની વિનામૂલ્યે યોજના હેઠળનું પુસ્તક

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल
'विद्यायन', सेक्टर 10ए, गांधीनगर-382010

© NCERT, नई दिल्ली और गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल, गांधीनगर

इस पाठ्यपुस्तक के सभी अधिकार NCERT, नई दिल्ली और गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल, गांधीनगर के अधीन हैं। इस पाठ्यपुस्तक का कोई भी अंश किसी भी रूप में NCERT, नई दिल्ली और गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल, गांधीनगर की लिखित अनुमति के बिना प्रकाशित नहीं किया जा सकता।

संयोजन एवं निर्माण-आयोजन

डॉ. कमलेश एन. परमार

(नायब नियामक : शैक्षणिक)

मुद्रण-आयोजन

श्री मनीष एच. बधेका

(नायब नियामक : उत्पादन)

वितरण-आयोजन

श्री हर्षद एच. चौधरी

(नायब नियामक : वहीवट-वितरण)

प्रस्तावना

राष्ट्रीय स्तर पर 'एक समान पाठ्यक्रम नीति' के अमलीकरण हेतु गुजरात राज्य सरकार तथा गुजरात माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा दिनांक 25-10-2017 के प्रस्ताव क्रमांक MSHBH/1217/1036 /CHH द्वारा गुजरात में पाठशाला स्तर पर NCERT, नई दिल्ली की पाठ्यपुस्तकों को सीधे अमल में लाने का संयुक्त निर्णय लिया गया था। इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर NCERT द्वारा प्रकाशित **कक्षा 10, भाग 2 कृतिका** विषय की यह पाठ्यपुस्तक अमल में लाई जा रही है।

वर्ष 2023 में NCERT, नई दिल्ली ने नई संशोधित पाठ्यपुस्तक तैयार की है। इस संदर्भ में गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल ने कृतिका की पाठ्यपुस्तक मुद्रित करने का उपक्रम किया है। इस पाठ्यपुस्तक को गुणात्मक और सारगर्भित बनाने में निष्णातों का विशेष योगदान रहा है।

इस पुस्तक को प्रकाशित करने से पूर्व विशेषज्ञों द्वारा सुझाए गए सभी आवश्यक सुझाव लिए गए हैं। फिर भी पाठ्यपुस्तक की गुणवत्ता में वृद्धि के लिए रचनात्मक सुझाओं का मंडल सदैव स्वागत करता है।

पूर्ण सहयोग के लिए गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल NCERT का कृतज्ञ है।

विनयगिरि गोसाई
नियामक
ता. 15-4-2024

डॉ. विनोद रामचंद्र राव
कार्यवाहक प्रमुख
गांधीनगर

संवर्धित आवृत्ति : 2024

प्रकाशक : गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल, 'विद्यायन', सेक्टर 10-ए, गांधीनगर की ओर से विनयगिरि गोसाई, नियामक

मुद्रक :

आमुख

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 सुझाती है कि बच्चों के स्कूली जीवन को बाहर के जीवन से जोड़ा जाना चाहिए। यह सिद्धांत किताबी ज्ञान की उस विरासत के विपरीत है जिसके प्रभाववश हमारी व्यवस्था आज तक स्कूल और घर के बीच अंतराल बनाए हुए है। नयी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर आधारित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें इस बुनियादी विचार पर अमल करने का एक प्रयास है। इस प्रयास में हर विषय को एक मज़बूत दीवार से घेर देने और जानकारी को रटा देने की प्रवृत्ति का विरोध शामिल है। आशा है कि ये कदम हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में वर्णित बाल–केंद्रित शिक्षा व्यवस्था की दिशा में काफ़ी दूर तक ले जाएँगे।

इस प्रयत्न की सफलता अब इस बात पर निर्भर है कि स्कूलों के प्राचार्य और अध्यापक बच्चों को कल्पनाशील गतिविधियों और सवालों की मदद से सीखने और सीखने के दौरान अपने अनुभवों पर विचार करने का कितना अवसर देते हैं। हमें यह मानना होगा कि यदि जगह, समय और आज़ादी दी जाए तो बच्चे बड़ों द्वारा सौंपी गई सूचना–सामग्री से जुड़कर और जूझकर नए ज्ञान का सृजन कर सकेंगे। शिक्षा के विविध साधनों एवं स्रोतों की अनदेखी किए जाने का प्रमुख कारण पाठ्यपुस्तक को परीक्षा का एकमात्र आधार बनाने की प्रवृत्ति है। सर्जना और पहल को विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि हम बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में पूरा भागीदार मानें और बनाएँ, उन्हें ज्ञान की निर्धारित खुराक का ग्राहक मानना छोड़ दें।

ये उद्देश्य स्कूल की दैनिक ज़िंदगी और कार्यशैली में काफ़ी फेरबदल की माँग करते हैं। दैनिक समय–सारणी में लचीलापन उतना ही ज़रूरी है जितना वार्षिक कैलेंडर के अमल में चुस्ती, जिससे शिक्षण के लिए नियत दिनों की संख्या हकीकत बन सके। शिक्षण और मूल्यांकन की विधियाँ भी इस बात को तय करेंगी कि यह पाठ्यपुस्तक स्कूल में बच्चों के जीवन को मानसिक दबाव तथा बोरियत की जगह खुशी का अनुभव बनाने में कितनी प्रभावी सिद्ध होती है। बोझ की समस्या से निपटने के लिए पाठ्यक्रम निर्माताओं ने विभिन्न चरणों

में ज्ञान का पुनर्निर्धारण करते समय बच्चों के मनोविज्ञान एवं अध्यापन के लिए उपलब्ध समय का ध्यान रखने की पहले से अधिक सचेत कोशिश की है। इस कोशिश को और गहराने के यत्न में यह पाठ्यपुस्तक सोच-विचार और विस्मय, छोटे समूहों में बातचीत एवं बहस और हाथ से की जाने वाली गतिविधियों को प्राथमिकता देती है।

एन.सी.ई.आर.टी. इस पुस्तक की रचना के लिए बनाई गई पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद् भाषा सलाहकार समिति के अध्यक्ष प्रो. नामवर सिंह और इस पुस्तक के मुख्य सलाहकार प्रो. पुरुषोत्तम अग्रवाल की विशेष आभारी है। पाठ्यपुस्तक के विकास में कई शिक्षकों के योगदान को संभव बनाने के लिए परिषद् उनके प्राचार्यों एवं उन सभी संस्थाओं और संगठनों के प्रति कृतज्ञ है जिन्होंने अपने संसाधनों, सामग्री तथा सहयोगियों की मदद लेने में उदारतापूर्वक सहयोग दिया। परिषद् माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रोफ़ेसर मृणाल मीरी एवं प्रोफ़ेसर जी.पी. देशपांडे की अध्यक्षता में गठित निगरानी समिति (मॉनिटरिंग कमेटी) के सदस्यों को अपना मूल्यवान समय और सहयोग देने के लिए धन्यवाद देती है। व्यवस्थागत सुधारों और अपने प्रकाशनों में निरंतर निखार लाने के प्रति समर्पित एन.सी.ई.आर.टी. टिप्पणियों एवं सुझावों का स्वागत करेगी जिनसे भावी संशोधनों में मदद ली जा सके।

निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्

नयी दिल्ली
20 नवंबर 2006

पाठ्यपुस्तकों में पाठ्य सामग्री का पुनर्संयोजन

कोविड-19 महामारी को देखते हुए, विद्यार्थियों के ऊपर से पाठ्य सामग्री का बोझ कम करना अनिवार्य है। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020* में भी विद्यार्थियों के लिए पाठ्य सामग्री का बोझ कम करने और रचनात्मक नज़रिए से अनुभवात्मक अधिगम के अवसर प्रदान करने पर ज़ोर दिया गया है। इस पृष्ठभूमि में, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने सभी कक्षाओं में पाठ्यपुस्तकों को पुनर्संयोजित करने की शुरुआत की है। इस प्रक्रिया में रा.शै.अ.प्र.प. द्वारा पहले से ही विकसित कक्षावार सीखने के प्रतिफलों को ध्यान में रखा गया है।

पाठ्य सामग्रियों के पुनर्संयोजन में निम्नलिखित बिंदुओं को ध्यान में रखा गया है –

- स्कूली शिक्षा के विभिन्न स्तरों की पाठ्यपुस्तकों एवं पूरक पाठ्यपुस्तकों में समान विधाओं का समायोजन;
- भाषायी दक्षता के लिए सीखने के प्रतिफलों की प्राप्ति संबंधी विषय वस्तु की उपस्थिति;
- कोविड महामारी से पैदा परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम-बोझ और परीक्षा तनाव को कम करना;
- विद्यार्थियों के लिए सहज रूप से सुलभ पाठ्य सामग्री का होना, जिसे शिक्षकों के अधिक हस्तक्षेप के बिना, वे खुद से या सहपाठियों के साथ पारस्परिक रूप से सीख सकते हों;
- वर्तमान संदर्भ में अप्रासंगिक सामग्री का होना।

वर्तमान संस्करण, ऊपर दिए गए परिवर्तनों को शामिल करते हुए तैयार किया गया पुनर्संयोजित संस्करण है।

भूमिका

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में पाठ्यपुस्तकों के साथ-साथ पूरक पाठ्यसाम्रगी के निर्माण पर भी विशेष बल दिया गया है ताकि विद्यार्थियों में तरह-तरह की किताबें पढ़ने की आदत विकसित हो। पाठ्यपुस्तक के गहन अध्ययन की सीमा से बाहर वे स्वयं पढ़कर अपने अनुसार साहित्य की समझ बना सकें। इतना ही नहीं आज के जीवन के तरह-तरह के दबाबों और आकर्षणों के बीच भी वे किताबों की दुनिया से जुड़े रहें।

पाठ्यपुस्तक की अपनी सीमा होती है और कई प्रमुख रचनाकार और विधाएँ उस सीमा के कारण छूट जाते हैं। उनमें से कुछ रचनाकारों और विधाओं से पूरक पाठ्यपुस्तक के माध्यम से विद्यार्थियों को परिचित कराया जा सकता है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए विद्यार्थियों की उम्र, रुचि और योग्यता के अनुसार इस पूरक पाठ्यपुस्तक का निर्माण किया गया है।

कृतिका भाग-2 में तीन रचनाएँ संकलित की गई हैं। तीनों रचनाएँ अपने कथ्य, शिल्प और प्रस्तुति में विशिष्ट हैं। **देहाती दुनिया** जैसी कृति एक अलग तरह की विषयवस्तु और कथा-शिल्प की प्रयोगधर्मिता के कारण साहित्य जगत में चर्चित रही है। यहाँ **देहाती दुनिया** अपने ढंग की अकेली औपन्यासिक कृति है। इस रचना से एक अंश संकलित किया गया है जिससे हमारे किशोर विद्यार्थी हिंदी की समृद्ध लोकसंस्कृति से परिचय प्राप्त कर सकें।

इसी तरह मधु कांकरिया का यात्रा-वृत्तांत **साना-साना हाथ जोड़ि...** और अज्ञेय का आत्मकथात्मक निबंध **मैं क्यों लिखता हूँ?** के माध्यम से विद्यार्थियों का विचार बोध, भावबोध और भाषा बोध भी समृद्ध होगा। कहना न होगा कि ये तीनों रचनाएँ मिलकर विविधता और रोचकता से भरपूर साहित्य का एक नया संसार रचती है।

विद्यार्थियों की सुविधा के लिए यहाँ संकलित रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

माता का अँचल

यह अंश शिवपूजन सहाय के उपन्यास **देहाती दुनिया** से लिया गया है। सन् 1926 में प्रकाशित **देहाती दुनिया** हिंदी का पहला आंचलिक उपन्यास माना जाता है। इतना ही नहीं यह स्मरण-शिल्प में लिखा गया हिंदी का पहला उपन्यास भी माना जाता है। इसमें ग्रामीण जीवन का चित्रण ग्रामीण जनता की भाषा में किया गया है। लेखक ने उपन्यास की भूमिका में यह संकेत दिया है कि ठेठ से ठेठ देहाती या अपढ़ गँवार, निरक्षर हलवाए और मज़दूर भी बड़ी आसानी से इसे समझ सकें। आत्मकथात्मक शैली में रचे गए इस उपन्यास का कथा-शिल्प अत्यंत मौलिक और प्रयोगधर्मी है। शिशु चरित्र भोलानाथ कथानक का दृष्टि बिंदु है।

संकलित अंश में ग्रामीण अंचल और उसके चरित्रों का एक अनोखा चित्र है। बालकों के खेल, कौतूहल, माँ की ममता, पिता का दुलार, लोकगीत आदि अनेक प्रसंग इसमें शामिल हैं। शहर की चकाचौंध से दूर गाँव की सहजता को रचनाकार ने आत्मीयता से प्रस्तुत किया है। यहाँ बाल मनोभावों की अभिव्यक्ति करते-करते लेखक ने तत्कालीन समाज के पारिवारिक परिवेश का चित्रण भी किया है।

साना-साना हाथ जोड़ि...

महानगरों की भाव-शून्यता, भागमभाग और यंत्रवत जीवन की ऊब मधु जी को दूर-दूर की यात्राओं की ओर ले जाती है और उन्हीं यात्राओं के अनुभवों को उन्होंने अपने यात्रा-वृत्तांतों में शब्दबद्ध किया है। **साना-साना हाथ जोड़ि...** में पूर्वोत्तर भारत के सिक्किम राज्य की राजधानी गंतोक और उसके आगे हिमालय की यात्रा का वर्णन है। हिमालय के अनंत सौंदर्य का ऐसा अद्‌भुत और काव्यात्मक वर्णन लेखिका ने किया है कि मानो हिमालय का पल-पल परिवर्तित सौंदर्य हम स्वयं अपनी आँखों से निहार रहे हों। महिला यायावरी की विशिष्टता भी इस यात्रा-वृत्तांत में देखी जा सकती है।

लेखिका हिमालय के सौंदर्य पर मुग्ध ही नहीं होती, वहाँ के निवासियों की मेहनत, अभाव और गरीबी को भी रेखांकित करती है। साथ ही यह बताना भी नहीं भूलती कि हिमालय तक पहुँचने के लिए बनाए जाने वाले रास्तों के निर्माण में लोग

अपनी जान गँवा चुके हैं। इस पाठ में पीड़ा और सौंदर्य का अद्‌भुत मेल है तथा इसे पढ़कर अकेलेपन और करुणा के भाव जाग्रत होते हैं तथा सृष्टि की समग्रता का अहसास होता है।

यात्राओं से मनोरंजन, ज्ञानवर्धन एवं अज्ञात स्थलों की जानकारी के साथ-साथ भाषा और संस्कृति का आदान-प्रदान भी होता है। इतना ही नहीं घुमक्कड़ी हमें अपने 'स्व' की संकीर्णता से भी मुक्त करती है।

मैं क्यों लिखता हूँ ?

हिंदी में एक समय इस पर चर्चा हुई थी कि लेखक क्यों लिखता है, किसके लिए लिखता है, उसके लेखन का प्रयोजन क्या है? **अज्ञेय** का यह **निबंध** भी उसी बहस से जुड़ा है।

अज्ञेय ने अपने इस छोटे से निबंध में यह बताया है कि रचनाकार की भीतरी विवशता ही उसे लेखन के लिए मजबूर करती है और लिखकर ही रचनाकार उससे मुक्त हो पाता है। अज्ञेय का मानना है कि प्रत्यक्ष अनुभव जब अनुभूति का रूप धारण करता है तभी रचना पैदा होती है। अनुभव के बिना अनुभूति नहीं होती परंतु जरूरी नहीं कि हर अनुभव अनुभूति बने। अनुभव जब भाव-जगत और संवेदना का हिस्सा बनता है तभी वह कलात्मक अनुभूति में रूपांतरित होता है। अज्ञेय ने **हिरोशिमा** कविता के उदाहरण द्वारा अपनी बात स्पष्ट की है।

भारत का संविधान

भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्तव्य

अनुच्छेद 51 क

मूल कर्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू सके; और

(ट) यदि माता-पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य को शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

अध्यक्ष, भाषा सलाहकार समिति

नामवर सिंह, *पूर्व अध्यक्ष,* भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू., नयी दिल्ली।

मुख्य सलाहकार

पुरुषोत्तम अग्रवाल, *पूर्व प्रोफ़ेसर,* भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू., नयी दिल्ली।

मुख्य समन्वयक

रामजन्म शर्मा, *पूर्व प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष,* भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

सदस्य

अनिता वैष्णव, *पी.जी.टी.* (हिंदी), दिल्ली पब्लिक स्कूल, वसंत कुंज, नयी दिल्ली।

अनुराधा, *पी.जी.टी.* (हिंदी), सरदार पटेल विद्यालय, लोधी एस्टेट, नयी दिल्ली।

दिविक रमेश, *प्राचार्य,* मोतीलाल नेहरू कॉलेज, नयी दिल्ली।

दुर्गा प्रसाद गुप्ता, *रीडर,* हिंदी विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नयी दिल्ली।

निरंजन देव, *प्राचार्य,* भारत-भारती स्कूल, ढालपुर, कुल्लू, हिमाचल प्रदेश।

निरंजन सहाय, *प्रवक्ता* (हिंदी), पं. उदय जैन महाविद्यालय, कानोड़ ज़िला, उदयपुर।

माधवी कुमार, *रीडर,* सी.आई.ई.टी., एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

वीरेंद्र सिंह रावत, *फ़ील्ड ऑफ़िसर,* शिक्षा विभाग, केंद्रीय शिक्षा संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

शारदा कुमारी, *प्रवक्ता,* डाइट, आर.के.पुरम, नयी दिल्ली।

हिमांशु पंड्या, *प्रवक्ता* (हिंदी), भूपाल नोबल्स, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उदयपुर।

सदस्य समन्वयक

चन्द्रा सदायत, *प्रोफ़ेसर,* भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

आभार

इस पुस्तक के निर्माण में अकादमिक सहयोग के लिए परिषद् शंभुनाथ, *निदेशक,* केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा; रामबक्ष, *प्रोफेसर* (हिंदी), इग्नू, नयी दिल्ली; कमल कुमार, *रीडर* (हिंदी), जीसस एंड मेरी कॉलेज, नयी दिल्ली; नीलकंठ कुमार, *पी.जी.टी.* (हिंदी), राजकीय बाल विद्यालय न. 1, पालम गाँव की आभारी है।

परिषद् रचनाकारों, रचनाकारों के परिजनों, संस्थानों, प्रकाशकों के प्रति आभारी है जिन्होंने रचनाओं को प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान की।

पुस्तक निर्माण संबंधी कार्यों में तकनीकी सहयोग के लिए परिषद् *कंप्यूटर स्टेशन इंचार्ज* (भाषा विभाग) परशराम कौशिक; *डी.टी.पी. ऑपरेटर* सचिन कुमार एवं विजय कौशल; *कॉपी एडिटर* वरुणा मित्तल एवं *प्रूफ रीडर* दुर्गा देवी की आभारी है।

परिषद्, इस संस्करण के पुनर्संयोजन के लिए पाठ्यक्रमों, पाठ्यपुस्तकों एवं विषय सामग्री के विश्लेषण हेतु दिए गए महत्वपूर्ण सहयोग के लिए पाठ्यचर्या समूह द्वारा गठित की गई समीक्षा समिति में भाषा शिक्षा विभाग के हिंदी संकाय सदस्यों तथा सी.बी.एस.ई. के प्रतिनिधियों के प्रति आभार व्यक्त करती है।

विषय-सूची

आमुख *iii*

पाठ्यपुस्तकों में पाठ्य सामग्री का पुनर्संयोजन *v*

भूमिका *vii*

1. माता का अँचल 1

–शिवपूजन सहाय

2. साना–साना हाथ जोड़ि... 10

–मधु कांकरिया

3. मैं क्यों लिखता हूँ? 24

–अज्ञेय

लेखक–परिचय 29

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक [1][**संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य**] बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म

और उपासना की **स्वतंत्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**

प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन **सब में**

व्यक्ति की गरिमा और [2][**राष्ट्र की एकता**

और अखंडता] सुनिश्चित करने वाली **बंधुता**

बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

---

1. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) ''प्रभुत्व-संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य'' के स्थान पर प्रतिस्थापित।
2. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) ''राष्ट्र की एकता'' के स्थान पर प्रतिस्थापित।

1056CH01

1
माता का अँचल

शिवपूजन सहाय

जहाँ लड़कों का संग, तहाँ बाजे मृदंग[1]

जहाँ बुड्ढों का संग, तहाँ खरचे का तंग

हमारे पिता तड़के[2] उठकर, निबट-नहाकर पूजा करने बैठ जाते थे। हम बचपन से ही उनके अंग लग गए थे। माता से केवल दूध पीने तक का नाता था। इसलिए पिता के साथ ही हम भी बाहर की बैठक में ही सोया करते। वह अपने साथ ही हमें भी उठाते और साथ ही नहला-धुलाकर पूजा पर बिठा लेते। हम भभूत का तिलक लगा देने के लिए उनको दिक करने लगते थे। कुछ हँसकर, कुछ झुँझलाकर और कुछ डाँटकर वह हमारे चौड़े लिलार[3] में त्रिपुंड[4] कर देते थे। हमारे लिलार में भभूत खूब खुलती थी। सिर में लंबी-लंबी जटाएँ थीं। भभूत रमाने से हम खासे 'बम-भोला' बन जाते थे।

पिता जी हमें बड़े प्यार से 'भोलानाथ' कहकर पुकारा करते। पर असल में हमारा नाम था 'तारकेश्वरनाथ'। हम भी उनको 'बाबू जी' कहकर पुकारा करते और माता को 'मइयाँ'।

जब बाबू जी रामायण का पाठ करते तब हम उनकी बगल में बैठे-बैठे आइने में अपना मुँह निहारा करते थे। जब वह हमारी ओर देखते तब हम कुछ लजाकर और मुसकराकर आइना नीचे रख देते थे। वह भी मुसकरा पड़ते थे।

पूजा-पाठ कर चुकने के बाद वह राम-राम लिखने लगते। अपनी एक 'रामनामा बही' पर हज़ार राम-नाम लिखकर वह उसे पाठ करने की पोथी के साथ बाँधकर रख देते। फिर

1. एक तरह का वाद्य यंत्र 2. प्रभात, सवेरा 3. ललाट 4. एक प्रकार का तिलक जिसमें ललाट पर तीन आड़ी या अर्धचंद्राकार रेखाएँ बनाई जाती हैं

पाँच सौ बार कागज़ के छोटे-छोटे टुकड़ों पर राम-नाम लिखकर आटे की गोलियों में लपेटते और उन गोलियों को लेकर गंगा जी की ओर चल पड़ते थे।

उस समय भी हम उनके कंधे पर विराजमान रहते थे। जब वह गंगा में एक-एक आटे की गोलियाँ फेंककर मछलियों को खिलाने लगते तब भी हम उनके कंधे पर ही बैठे-बैठे हँसा करते थे। जब वह मछलियों को चारा देकर घर की ओर लौटने लगते तब बीच रास्ते में झुके हुए पेड़ों की डालों पर हमें बिठाकर झूला झुलाते थे।

कभी-कभी बाबू जी हमसे कुश्ती भी लड़ते। वह शिथिल होकर हमारे बल को बढ़ावा देते और हम उनको पछाड़ देते थे। यह उतान[5] पड़ जाते और हम उनकी छाती पर चढ़ जाते थे। जब हम उनकी लंबी-लंबी मूँछें उखाड़ने लगते तब वह हँसते-हँसते हमारे हाथों को मूँछों से छुड़ाकर उन्हें चूम लेते थे। फिर जब हमसे खट्टा और मीठा चुम्मा माँगते तब हम बारी-बारी कर अपना बायाँ और दाहिना गाल उनके मुँह की ओर फेर देते थे। बाएँ का खट्टा चुम्मा लेकर जब वह दाहिने का मीठा चुम्मा लेने लगते तब अपनी दाढ़ी या मूँछ हमारे कोमल गालों पर गड़ा देते थे। हम झुँझलाकर फिर उनकी मूँछें नोचने लग जाते थे। इस पर वह बनावटी रोना रोने लगते और हम अलग खड़े-खड़े खिल-खिलाकर हँसने लग जाते थे।

उनके साथ हँसते-हँसते जब हम घर आते तब उनके साथ ही हम भी चौके पर खाने बैठते थे। वह हमें अपने ही हाथ से, फूल के एक कटोरे में गोरस और भात सानकर[6] खिलाते थे। जब हम खाकर अफर[7] जाते तब मइयाँ थोड़ा और खिलाने के लिए हठ करती थी। वह बाबू जी से कहने लगती—आप तो चार-चार दाने के कौर बच्चे के मुँह में देते जाते हैं; इससे वह थोड़ा खाने पर भी समझ लेता है कि हम बहुत खा गए; आप खिलाने का ढंग नहीं जानते—बच्चे को भर-मुँह कौर खिलाना चाहिए।

जब खाएगा बड़े-बड़े कौर, तब पाएगा दुनिया में ठौर[8]।

—देखिए, मैं खिलाती हूँ। मरदुए क्या जाने कि बच्चों को कैसे खिलाना चाहिए, और महतारी[9] के हाथ से खाने पर बच्चों का पेट भी भरता है।

यह कह वह थाली में दही-भात सानती और अलग-अलग तोता, मैना, कबूतर, हंस, मोर आदि के बनावटी नाम से कौर बनाकर यह कहते हुए खिलाती जाती कि जल्दी खा लो, नहीं तो उड़ जाएँगे; पर हम उन्हें इतनी जल्दी उड़ा जाते थे कि उड़ने का मौका ही नहीं मिलता था।

5. पीठ के बल लेटना 6. मिलाना, लपेटना, गूँधना 7. भर पेट से अधिक खा लेना
8. स्थान, अवसर 9. माता

जब हम सब बनावटी चिड़ियों को चट कर जाते थे तब बाबू जी कहने लगते–अच्छा, अब तुम 'राजा' हो, जाओ खेलो।

बस, हम उठकर उछलने-कूदने लगते थे। फिर रस्सी में बँधा हुआ काठ का घोड़ा लेकर नंग-धड़ंग बाहर गली में निकल जाते थे।

जब कभी मइयाँ हमें अचानक पकड़ पाती तब हमारे लाख छटपटाने पर भी एक चुल्लू कड़वा तेल[10] हमारे सिर पर डाल ही देती थी। हम रोने लगते और बाबू जी उस पर बिगड़ खड़े होते; पर वह हमारे सिर में तेल बोथकर[11] हमें उबटकर ही छोड़ती थी। फिर हमारी नाभी और लिलार में काजल की बिंदी लगाकर चोटी गूँथती और उसमें फूलदार लट्टू बाँधकर रंगीन कुरता-टोपी पहना देती थी। हम खासे 'कन्हैया' बनकर बाबू जी की गोद में सिसकते-सिसकते बाहर आते थे।

बाहर आते ही हमारी बाट जोहनेवाला बालकों का एक झुंड मिल जाता था। हम उन खेल के साथियों को देखते ही, सिसकना भूलकर, बाबू जी की गोद से उतर पड़ते और अपने हमजोलियों के दल में मिलकर तमाशे करने लग जाते थे।

तमाशे भी ऐसे-वैसे नहीं, तरह-तरह के नाटक! चबूतरे का एक कोना ही नाटक-घर बनता था। बाबू जी जिस छोटी चौकी पर बैठकर नहाते थे, वही रंगमंच बनती। उसी पर सरकंडे के खंभों पर कागज़ का चँदोआ[12] तानकर, मिठाइयों की दुकान लगाई जाती। उसमें चिलम के खोंचे पर कपड़े के थालों में ढेले के लड्डू, पत्तों की पूरी-कचौरियाँ, गीली मिट्टी की जलेबियाँ, फूटे घड़े के टुकड़ों के बताशे आदि मिठाइयाँ सजाई जातीं। ठीकरों के बटखरे और जस्ते के छोटे-छोटे टुकड़ों के पैसे बनते। हमीं लोग खरीदार और हमीं लोग दुकानदार। बाबू जी भी दो-चार गोरखपुरिए पैसे खरीद लेते थे।

थोड़ी देर में मिठाई की दुकान बढ़ाकर हम लोग घरौंदा बनाते थे। धूल की मेड़ दीवार बनती और तिनकों का छप्पर। दातून के खंभे, दियासलाई की पेटियों के किवाड़, घड़े के मुँहड़े की चूल्हा-चक्की, दीए की कड़ाही और बाबू जी की पूजा वाली आचमनी कलछी बनती थी। पानी के घी, धूल के पिसान और बालू की चीनी से हम लोग ज्योनार[13] तैयार करते थे। हमीं लोग ज्योनार करते और हमीं लोगों की ज्योनार बैठती थी। जब पंगत बैठ जाती थी तब बाबू जी भी धीरे-से आकर, पाँत के अंत में, जीमने[14] के लिए बैठ जाते थे। उनको बैठते देखते ही हम लोग हँसकर और घरौंदा बिगाड़कर भाग चलते थे। वह भी हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते और कहने लगते–फिर कब भोज होगा भोलानाथ?

10. सरसों का तेल 11. सराबोर कर देना 12. छोटा शामियाना 13. भोज, दावत
14. भोजन करना

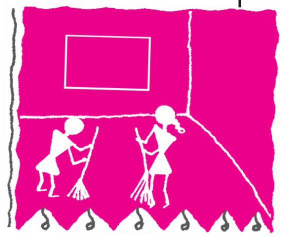

कभी-कभी हम लोग बरात का भी जुलूस निकालते थे। कनस्तर का तंबूरा बजता, अमोले[15] को घिसकर शहनाई बजायी जाती, टूटी चूहेदानी की पालकी बनती, हम समधी बनकर बकरे पर चढ़ लेते और चबूतरे के एक कोने से चलकर बरात दूसरे कोने में जाकर दरवाज़े लगती थी। वहाँ काठ की पटरियों से घिरे, गोबर से लिपे, आम और केले की टहनियों से सजाए हुए छोटे आँगन में कुल्हिए का कलसा रखा रहता था। वहीं पहुँचकर बरात फिर लौट आती थी। लौटने के समय, खटोली पर लाल ओहार[16] डालकर, उसमें दुलहिन को चढ़ा लिया जाता था। लौट आने पर बाबू जी ज्यों ही ओहार उघारकर दुलहिन का मुख निरखने लगते, त्यों ही हम लोग हँसकर भाग जाते।

थोड़ी देर बाद फिर लड़कों की मंडली जुट जाती थी। इकट्ठा होते ही राय जमती कि खेती की जाए। बस, चबूतरे के छोर पर घिरनी गड़ जाती और उसके नीचे की गली कुआँ बन जाती थी। मूँज की बटी हुई पतली रस्सी में एक चुक्कड़ बाँध गराड़ी पर चढ़ाकर लटका दिया जाता और दो लड़के बैल बनकर 'मोट' खींचने लग जाते। चबूतरा खेत बनता, कंकड़ बीज और ठेंगा हल-जुआठा। बड़ी मेहनत से खेत जोते-बोए और पटाए जाते। फसल तैयार होते देर न लगती और हम हाथोंहाथ फसल काट लेते थे। काटते समय गाते थे–

ऊँच नीच में बई कियारी, जो उपजी सो भई हमारी।

फसल को एक जगह रखकर उसे पैरों से रौंद डालते थे। कसोरे[17] का सूप बनाकर ओसाते और मिट्टी की दीए के तराज़ू पर तौलकर राशि तैयार कर देते थे। इसी बीच बाबू जी आकर पूछ बैठते थे–इस साल की खेती कैसी रही भोलानाथ?

बस, फिर क्या, हम लोग ज्यों-का-त्यों खेत-खलिहान छोड़कर हँसते हुए भाग जाते थे। कैसी मौज की खेती थी।

ऐसे-ऐसे नाटक हम लोग बराबर खेला करते थे। बटोही भी कुछ देर ठिठककर हम लोगों के तमाशे देख लेते थे।

जब कभी हम लोग ददरी के मेले में जाने वाले आदमियों का झुंड देख पाते तब कूद-कूदकर चिल्लाने लगते थे–

चलो भाइयो ददरी, सतू पिसान की मोटरी।

अगर किसी दूल्हे के आगे-आगे जाती हुई ओहारदार पालकी देख पाते, तब खूब ज़ोर से चिल्लाने लगते थे–

15. आम का उगता हुआ पौधा 16. परदे के लिए डाला हुआ कपड़ा
17. मिट्टी का बना छिछला कटोरा

रहरी[18] में रहरी पुरान रहरी, डोला के कनिया हमार मेहरी।

इसी पर एक बार बूढ़े वर ने हम लोगों को बड़ी दूर तक खदेड़कर ढेलों से मारा था। उस खसूट-खब्बीस की सूरत आज तक हमें याद है। न जाने किस ससुर ने वैसा जमाई ढूँढ़ निकाला था। वैसा घोड़ मुँहा आदमी हमने कभी नहीं देखा।

आम की फसल में कभी-कभी खूब आँधी आती है। आँधी के कुछ दूर निकल जाने पर हम लोग बाग की ओर दौड़ पड़ते थे। वहाँ चुन-चुनकर घुले-घुले 'गोपी' आम चाबते थे।

एक दिन की बात है, आँधी आई और पट पड़ गयी। आकाश काले बादलों से ढक गया। मेघ गरजने लगे। बिजली कौंधने और ठंडी हवा सनसनाने लगी। पेड़ झूमने और ज़मीन चूमने लगे। हम लोग चिल्ला उठे—

एक पइसा की लाई, बाज़ार में छितराई, बरखा उधरे बिलाई।

लेकिन बरखा न रुकी; और भी मूसलाधार पानी होने लगा। हम लोग पेड़ों की जड़ से धड़ से सट गए, जैसे कुत्ते के कान में अँठई[19] चिपक जाती है। मगर बरखा जमी नहीं, थम गई।

बरखा बंद होते ही बाग में बहुत-से बिच्छू नज़र आए। हम लोग डरकर भाग चले। हम लोगों में बैजू बड़ा ढीठ था। संयोग की बात, बीच में मूसन तिवारी मिल गए। बेचारे बूढ़े आदमी को सूझता कम था। बैजू उनको चिढ़ाकर बोला—

बुढ़वा बेईमान माँगे करैला का चोखा।

हम लोगों ने भी, बैजू के सुर-में-सुर मिलाकर यही चिल्लाना शुरू किया। मूसन तिवारी ने बेतहाशा खदेड़ा। हम लोग तो बस अपने-अपने घर की ओर आँधी हो चले।

जब हम लोग न मिल सके तब तिवारी जी सीधे पाठशाला में चले गए। वहाँ से हमको और बैजू को पकड़ लाने के लिए चार लड़के 'गिरफ्तारी वारंट' लेकर छूटे। इधर ज्यों ही हम लोग घर पहुँचे, त्यों ही गुरु जी के सिपाही हम लोगों पर टूट पड़े। बैजू तो नौ-दो ग्यारह हो गया; हम पकड़े गए। फिर तो गुरु जी ने हमारी खूब खबर ली।

बाबू जी ने यह हाल सुना। वह दौड़े हुए पाठशाला में आए। गोद में उठाकर हमें पुचकारने और फुसलाने लगे। पर हम दुलारने से चुप होनेवाले लड़के नहीं थे। रोते-रोते उनका कंधा आँसुओं से तर कर दिया। वह गुरु जी की चिरौरी[20] करके हमें घर ले चले। रास्ते में फिर हमारे साथी लड़कों का झुंड मिला। वे ज़ोर से नाचते और गाते थे—

18. अरहर 19. कुत्ते के शरीर में चिपके रहने वाले छोटे कीड़े, किलनी
20. दीनतापूर्वक की जाने वाली प्रार्थना, विनती

माई पकाई गरर–गरर पूआ, हम खाइब पूआ, ना खेलब जुआ।

फिर क्या था, हमारा रोना–धोना भूल गया। हम हठ करके बाबू जी की गोद से उतर पड़े और लड़कों की मंडली में मिलकर लगे वही तान–सुर अलापने। तब तक सब लड़के सामनेवाले मकई के खेत में दौड़ पड़े। उसमें चिड़ियों का झुंड चर रहा था। वे दौड़–दौड़कर उन्हें पकड़ने लगे, पर एक भी हाथ न आई। हम खेत से अलग ही खड़े होकर गा रहे थे–

राम जी की चिरई, राम जी का खेत, खा लो चिरई, भर–भर पेट।

हमसे कुछ दूर बाबू जी और हमारे गाँव के कई आदमी खड़े होकर तमाशा देख रहे थे और यही कहकर हँसते थे कि 'चिड़िया की जान जाए, लड़कों का खिलौना'। सचमुच 'लड़के और बंदर पराई पीर नहीं समझते।'

एक टीले पर जाकर हम लोग चूहों के बिल से पानी उलीचने लगे।

नीचे से ऊपर पानी फेंकना था। हम सब थक गए। तब तक गणेश जी के चूहे की रक्षा के लिए शिव जी का साँप निकल आया। रोते–चिल्लाते हम लोग बेतहाशा भाग चले! कोई औंधा गिरा, कोई अंटाचिट। किसी का सिर फूटा, किसी के दाँत टूटे। सभी गिरते–पड़ते भागे। हमारी सारी देह लहूलुहान हो गई। पैरों के तलवे काँटों से छलनी हो गए।

1.

हम एक सुर से दौड़े हुए आए और घर में घुस गए। उस समय बाबू जी बैठक के ओसारे[21] में बैठकर हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। उन्होंने हमें बहुत पुकारा पर उनकी अनसुनी करके हम दौड़ते हुए मइयाँ के पास ही चले गए। जाकर उसी की गोद में शरण ली।

'मइयाँ' चावल अमनिया[22] कर रही थी। हम उसी के आँचल में छिप गए। हमें डर से काँपते देखकर वह ज़ोर से रो पड़ी और सब काम छोड़ बैठी। अधीर होकर हमारे भय का कारण पूछने लगी। कभी हमें अंग भरकर दबाती और कभी हमारे अंगों को अपने आँचल से पोंछकर हमें चूम लेती। बड़े संकट में पड़ गई।

झटपट हल्दी पीसकर हमारे घावों पर थोपी गई। घर में कुहराम मच गया। हम केवल धीमे सुर से "साँ...स...साँ" कहते हुए मइयाँ के आँचल में लुके चले जाते थे। सारा शरीर थर-थर काँप रहा था। रोंगटे खड़े हो गए थे। हम आँखें खोलना चाहते थे; पर वे खुलती न थीं। हमारे काँपते हुए ओंठों को मइयाँ बार-बार निहारकर रोती और बड़े लाड़ से हमें गले लगा लेती थी।

इसी समय बाबू जी दौड़े आए। आकर झट हमें मइयाँ की गोद से अपनी गोद में लेने लगे। पर हमने मइयाँ के आँचल की—प्रेम और शांति के चँदोवे की—छाया न छोड़ी...।

प्रश्न-अभ्यास

1. प्रस्तुत पाठ के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बच्चे का अपने पिता से अधिक जुड़ाव था, फिर भी विपदा के समय वह पिता के पास न जाकर माँ की शरण लेता है। आपकी समझ से इसकी क्या वजह हो सकती है?
2. आपके विचार से भोलानाथ अपने साथियों को देखकर सिसकना क्यों भूल जाता है?
3. आपने देखा होगा कि भोलानाथ और उसके साथी जब-तब खेलते-खाते समय किसी न किसी प्रकार की तुकबंदी करते हैं। आपको यदि अपने खेलों आदि से जुड़ी तुकबंदी याद हो तो लिखिए।
4. भोलानाथ और उसके साथियों के खेल और खेलने की सामग्री आपके खेल और खेलने की सामग्री से किस प्रकार भिन्न है?
5. पाठ में आए ऐसे प्रसंगों का वर्णन कीजिए जो आपके दिल को छू गए हों?
6. इस उपन्यास अंश में तीस के दशक की ग्राम्य संस्कृति का चित्रण है। आज की ग्रामीण संस्कृति में आपको किस तरह के परिवर्तन दिखाई देते हैं।
7. पाठ पढ़ते-पढ़ते आपको भी अपने माता-पिता का लाड़-प्यार याद आ रहा होगा। अपनी इन भावनाओं को डायरी में अंकित कीजिए।

21. बरामदा 22. साफ़, शुद्ध

8. यहाँ माता-पिता का बच्चे के प्रति जो वात्सल्य व्यक्त हुआ है उसे अपने शब्दों में लिखिए।
9. **माता का अँचल** शीर्षक की उपयुक्तता बताते हुए कोई अन्य शीर्षक सुझाइए।
10. बच्चे माता-पिता के प्रति अपने प्रेम को कैसे अभिव्यक्त करते हैं?
11. इस पाठ में बच्चों की जो दुनिया रची गई है वह आपके बचपन की दुनिया से किस तरह भिन्न है?
12. फणीश्वरनाथ रेणु और नागार्जुन की आंचलिक रचनाओं को पढ़िए।

1056CH03

2

साना-साना हाथ जोड़ि...

मधु कांकरिया

मैंने हैरान होकर देखा–आसमान जैसे उलटा पड़ा था और सारे तारे बिखरकर नीचे टिमटिमा रहे थे। दूर...ढलान लेती तराई पर सितारों के गुच्छे रोशनियों की एक झालर-सी बना रहे थे। क्या था वह? वह रात में जगमगाता गैंगटॉक शहर था–इतिहास और वर्तमान के संधि-स्थल पर खड़ा मेहनतकश बादशाहों का वह एक ऐसा शहर था जिसका सब कुछ सुंदर था–सुबह, शाम, रात।

और वह रहस्यमयी सितारों भरी रात मुझमें सम्मोहन जगा रही थी, कुछ इस कदर कि उन जादू भरे क्षणों में मेरा सब कुछ स्थगित था, अर्थहीन था...मैं, मेरी चेतना, मेरा आस-पास। मेरे भीतर-बाहर सिर्फ़ शून्य था और थी अतींद्रियता[1] में डूबी रोशनी की वह जादुई झालर।

धीरे-धीरे एक उजास[2] उस शून्य से फूटने लगा...एक प्रार्थना होंठों को छूने लगी... साना-साना हाथ जोड़ि, गर्दहु प्रार्थना। हाम्रो जीवन तिम्रो कौसेली (छोटे-छोटे हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रही हूँ कि मेरा सारा जीवन अच्छाइयों को समर्पित हो)। आज सुबह की प्रार्थना के ये बोल मैंने एक नेपाली युवती से सीखे थे।

सुबह हमें यूमथांग के लिए निकल पड़ना था, पर आँख खुलते ही मैं बालकनी की तरफ़ भागी। यहाँ के लोगों ने बताया था कि यदि मौसम साफ़ हो तो बालकनी से भी कंचनजंघा दिखाई देती है। हिमालय की तीसरी सबसे बड़ी चोटी कंचनजंघा! पर मौसम अच्छा होने के बावजूद आसमान हलके-हलके बादलों से ढका था, पिछले वर्ष की ही

1. इन्द्रियों से परे 2. प्रकाश, उजाला

तरह इस बार भी बादलों के कपाट ठाकुर जी के कपाट की तरह बंद ही रहे। कंचनजंघा न दिखनी थी, न दिखी। पर सामने ही रकम-रकम[3] के रंग-बिरंगे इतने सारे फूल दिखाई पड़े कि लगा फूलों के बाग में आ गई हूँ।

बहरहाल...गैंगटॉक से 149 किलोमीटर की दूरी पर यूमथांग था। "यूमथांग यानी घाटियाँ...सारे रास्ते हिमालय की गहनतम घाटियाँ और फूलों से लदी वादियाँ मिलेंगी आपको" ड्राइवर-कम-गाइड जितेन नार्गे मुझे बता रहा था। "क्या वहाँ बर्फ़ मिलेगी?" मैं बचकाने उत्साह से पूछने लगती हूँ।

चलिए तो...।

जगह-जगह गदराए पाईन और धूपी के खूबसूरत नुकीले पेड़ों का जायजा लेते हुए हम पहाड़ी रास्तों पर आगे बढ़ने लगे कि एक जगह दिखाई दीं...एक कतार में लगी सफ़ेद-सफ़ेद बौद्ध पताकाएँ। किसी ध्वज की तरह लहराती...शांति और अहिंसा की प्रतीक ये पताकाएँ जिन पर मंत्र लिखे हुए थे। नार्गे ने बताया–यहाँ बुद्ध की बड़ी मान्यता है। जब भी किसी बुद्धिस्ट की मृत्यु होती है, उसकी आत्मा की शांति के लिए शहर से दूर किसी भी पवित्र स्थान पर एक सौ आठ श्वेत पताकाएँ फहरा दी जाती हैं। नहीं, इन्हें उतारा नहीं जाता है, ये धीरे-धीरे अपने आप ही नष्ट हो जाती हैं। कई बार किसी नए कार्य की शुरुआत में भी ये पताकाएँ लगा दी जाती हैं पर वे रंगीन होती हैं। नार्गे बोलता जा रहा था और मेरी नज़र उसकी जीप में लगी दलाई लामा की तसवीर पर टिकी हुई थी। कई दुकानों पर भी मैंने दलाई लामा की ऐसी ही तसवीर देखी थी।

हिचकोले खाती हमारी जीप थोड़ी और आगे बढ़ी। अपनी लुभावनी हँसी बिखेरते हुए जितेन बताने लगा...इस जगह का नाम है कवी-लोंग स्टॉक। यहाँ 'गाइड' फिल्म की शूटिंग हुई थी। तिब्बत के चीस-खे बम्सन ने लेपचाओं के शोमेन से कुंजतेक के साथ संधि-पत्र पर यहीं हस्ताक्षर किए थे। एक पत्थर यहाँ स्मारक के रूप में भी है। (लेपचा और भुटिया सिक्किम की इन दोनों स्थानीय जातियों के बीच चले सुदीर्घ झगड़ों के बाद शांति वार्ता का शुरुआती स्थल।)

उन्हीं रास्तों पर मैंने देखा–एक कुटिया के भीतर घूमता चक्र। यह क्या? नार्गे कहने लगा..."मैडम यह धर्म चक्र है। प्रेयर व्हील। इसको घुमाने से सारे पाप धुल जाते हैं।"

"क्या?" चाहे मैदान हो या पहाड़, तमाम वैज्ञानिक प्रगतियों के बावजूद इस देश की आत्मा एक जैसी। लोगों की आस्थाएँ, विश्वास, अंधविश्वास, पाप-पुण्य की अवधारणाएँ और कल्पनाएँ एक जैसी।

3. तरह-तरह के

रफ़्ता-रफ़्ता[4] हम ऊँचाई की ओर बढ़ने लगे। बाज़ार, लोग और बस्तियाँ पीछे छूटने लगे। अब परिदृश्य से चलते-चलते स्वेटर बुनती नेपाली युवतियाँ और पीठ पर भारी-भरकम कार्टून ढोते बौने से दिखते बहादुर नेपाली ओझल हो रहे थे। अब नीचे देखने पर घाटियों में ताश के घरों की तरह पेड़-पौधों के बीच छोटे-छोटे घर दिखाई दे रहे थे। हिमालय भी अब छोटी-छोटी पहाड़ियों के रूप में नहीं वरन् अपने विराट रूप एवं वैभव के साथ सामने आने वाला था। न जाने कितने दर्शकों, यात्रियों और तीर्थाटानियों का काम्य हिमालय। पल-पल परिवर्तित हिमालय!

और देखते-देखते रास्ते वीरान, सँकरे और जलेबी की तरह घुमावदार होने लगे थे। हिमालय बड़ा होते-होते विशालकाय होने लगा। घटाएँ गहराती-गहराती पाताल नापने लगीं। वादियाँ चौड़ी होने लगीं। बीच-बीच में करिश्मे की तरह रंग-बिरंगे फूल शिद्दत[5] से मुसकराने लगे। उन भीमकाय पर्वतों के बीच और घाटियों के ऊपर बने संकरे कच्चे -पक्के रास्तों से गुज़रते यूँ लग रहा था जैसे हम किसी सघन हरियाली वाली गुफा के बीच हिचकोले खाते निकल रहे हों।

4. धीरे-धीरे 5. तीव्रता, प्रबलता, अधिकता

इस बिखरी असीम सुंदरता का मन पर यह प्रभाव पड़ा कि सभी सैलानी झूम-झूमकर गाने लगे—"सुहाना सफ़र और ये मौसम हँसी...।"

पर मैं मौन थी। किसी ऋषि की तरह शांत थी। मैं चाहती थी कि इस सारे परिदृश्य को अपने भीतर भर लूँ। पर मेरे भीतर कुछ बूँद-बूँद पिघलने लगा था। जीप की खिड़की से मुंडकी[6] निकाल-निकाल मैं कभी आसमान को छूते पर्वतों के शिखर देखती तो कभी ऊपर से दूध की धार की तरह झर-झर गिरते जल-प्रपातों को। तो कभी नीचे चिकने-चिकने गुलाबी पत्थरों के बीच इठला-इठला कर बहती, चाँदी की तरह कौंध मारती बनी-ठनी तिस्ता नदी को। सिलीगुड़ी से ही हमारे साथ थी यह तिस्ता नदी। पर यहाँ उसका सौंदर्य पराकाष्ठा पर था। इतनी खूबसूरत नदी मैंने पहली बार देखी थी। मैं रोमांचित थी। पुलकित थी। चिड़िया के पंखों की तरह हलकी थी।

"मेरे नगपति मेरे विशाल"—मैंने हिमालय को सलामी देनी चाही कि तभी जीप एक जगह रुकी...खूब ऊँचाई से पूरे वेग के साथ ऊपर शिखरों के भी शिखर से गिरता फेन उगलता झरना। इसका नाम था—'सेवन सिस्टर्स वॉटर फॉल।' फ़्लैश चमकने लगे। सभी सैलानी इन खूबसूरत लम्हों की रंगत को कैमरे में कैद करने में मशगूल[7] थे।

आदिम युग की किसी अभिशप्त[8] राजकुमारी-सी मैं भी नीचे बिखरे भारी-भरकम पत्थरों पर बैठ झरने के संगीत के साथ ही आत्मा का संगीत सुनने लगी। थोड़ी देर बाद ही बहती जलधारा में पाँव डुबोया तो भीतर तक भीग गई। मन काव्यमय हो उठा। सत्य और सौंदर्य को छूने लगा।

जीवन की अनंतता का प्रतीक वह झरना...उन अद्भुत-अनूठे क्षणों में मुझमें जीवन की शक्ति का अहसास हो रहा था। इस कदर प्रतीत हुआ कि जैसे मैं स्वयं भी देश और काल की सरहदों[9] से दूर बहती धारा बन बहने लगी हूँ। भीतर की सारी तामसिकताएँ[10] और दुष्ट वासनाएँ[11] इस निर्मल धारा में बह गईं। मन हुआ कि अनंत समय तक ऐसे ही बहती रहूँ...सुनती रहूँ इस झरने की पुकार को। पर जितेन मुझे ठेलने लगा...आगे इससे भी सुंदर नज़ारे मिलेंगे।

अनमनी-सी मैं उठी। थोड़ी देर बाद ही फिर वही नज़ारे—आँखों और आत्मा को सुख देने वाले। कहीं चटक हरे रंग का मोटा कालीन ओढ़े तो कहीं हलका पीलापन लिए, तो कहीं पलस्तर उखड़ी दीवार की तरह पथरीला और देखते ही देखते परिदृश्य से सब छू-मंतर...जैसे किसी ने जादू की छड़ी घुमा दी हो। सब पर बादलों की एक मोटी चादर। सब कुछ बादलमय।

6. सिर 7. व्यस्त 8. शापित, अभियुक्त 9. सीमा 10. तमोगुण से युक्त, कुटिल 11. बुरी इच्छाएँ

चित्रलिखित-सी मैं 'माया' और 'छाया' के इस अनूठे खेल को भर-भर आँखों देखती जा रही थी। प्रकृति जैसे मुझे सयानी[12] बनाने के लिए जीवन रहस्यों का उद्‌घाटन करने पर तुली हुई थी।

धीरे-धीरे धुंध की चादर थोड़ी छँटी। अब वहाँ पहाड़ नहीं, दो विपरीत दिशाओं से आते छाया-पहाड़ थे और थोड़ी देर बाद ही वे छाया-पहाड़ अपने श्रेष्ठतम रूप में मेरे सामने थे। जीप थोड़ी देर के लिए रुकवा दी गई थी। मैंने गर्दन घुमाई...सब ओर जैसे जन्नत[13] बिखरी पड़ी थी। नज़रों के छोर तक खूबसूरती ही खूबसूरती। अपने को निरंतर दे देने की अनुभूति कराते पर्वत, झरने, फूलों, घाटियों और वादियों के दुर्लभ नज़ारे! वहीं कहीं लिखा था...'थिंक ग्रीन।'

आश्चर्य! पलभर में ब्रह्मांड में कितना कुछ घटित हो रहा था। सतत प्रवाहमान झरने, नीचे वेग से बहती तिस्ता नदी। सामने उठती धुंध। ऊपर मँडराते आवारा बादल। मद्धिम-मद्धिम हवा में हिलोरे लेते प्रियुता और रूडोडेंड्रो के फूल। सब अपनी-अपनी लय तान और प्रवाह में बहते हुए। चैरवेति-चैरवेति[14]। और समय के इसी सतत प्रवाह में तिनके-सा बहता हमारा वजूद[15]।

पहली बार अहसास हुआ...जीवन का आनंद है यही चलायमान सौंदर्य।

संपूर्णता के उन क्षणों में मन इस बिखरे सौंदर्य से इस कदर एकात्म हो रहा था कि भीतर-बाहर की रेखा मिट गई थी, आत्मा की सारी खिड़कियाँ खुलने लगी थीं...मैं सचमुच ईश्वर के निकट थी। सुबह सीखी प्रार्थना फिर होठों को छूने लगी थी...साना-साना हाथ जोड़ि...कि तभी वह अतींद्रिय संसार खंड-खंड हो गया! वह महाभाव सूखी टहनी-सा टूट गया।

दरअसल मंत्रमुग्ध-सी मैं तंद्रिल अवस्था में ही थोड़ी दूर तक निकल आई थी कि अचानक पाँवों पर ब्रेक सी लगी...जैसे समाधिस्थ भाव में नृत्य करती किसी आत्मलीन नृत्यांगना के नुपूर अचानक टूट गए हों। मैंने देखा इस अद्वितीय सौंदर्य से निरपेक्ष कुछ पहाड़ी औरतें पत्थरों पर बैठीं पत्थर तोड़ रही थीं। गुँथे आटे-सी कोमल काया पर हाथों में कुदाल और हथौड़े! कईयों की पीठ पर बँधी डोको (बड़ी टोकरी) में उनके बच्चे भी बँधे हुए थे। कुछ कुदाल को भरपूर ताकत के साथ ज़मीन पर मार रही थीं।

इतने स्वर्गीय सौंदर्य, नदी, फूलों, वादियों और झरनों के बीच भूख, मौत, दैन्य और ज़िंदा रहने की यह जंग! मातृत्व और श्रम साधना साथ-साथ। वहीं पर खड़े बी.आर.ओ. (बोर्ड रोड आर्गेनाइजेशन) के एक कर्मचारी से पूछा मैंने, "यह क्या हो रहा है? उसने

12. समझदार, चतुर 13. स्वर्ग 14. चलते रहो, चलते रहो 15. अस्तित्व

चुहलबाज़ी के अंदाज़ में बताया जिन रास्तों से गुज़रते हुए आप हिम-शिखरों से टक्कर लेने जा रही हैं उन्हीं रास्तों को ये पहाड़िनें चौड़ा बना रही हैं।"

"बड़ा खतरनाक कार्य होगा यह" मेरे मुँह से अकस्मात निकला। वह संजीदा हो गया। कहने लगा, पिछले महीने तो एक की जान भी चली गई थी। बड़ा दुसाध्य कार्य है पहाड़ों पर रास्ता बनाना। पहले डाइनामाइट से चट्टानों को उड़ा दिया जाता है। फिर बड़े-बड़े पत्थरों को तोड़-मोड़कर एक आकार के छोटे-छोटे पत्थरों में बदला जाता है, फिर बड़े-से जाले में उन्हें लंबी पट्टी की तरह बिठाकर कटे रास्तों पर बाड़े की तरह लगाया जाता है। ज़रा-सी चूक और सीधा पाताल प्रवेश!

और तभी मुझे ध्यान आया...इन्हीं रास्तों पर एक जगह सिक्किम सरकार का बोर्ड लगा था जिस पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था, "एवर वंडर्ड हू डिफाइड डेथ टू बिल्ड दीज रोड्स।" (आप ताज्जुब करेंगे पर इन रास्तों को बनाने में लोगों ने मौत को झुठलाया है।)

एकाएक मेरा मानसिक चैनल बदला। मन पीछे घूम गया। इसी प्रकार एक बार पलामू और गुमला के जंगलों में देखा था...पीठ पर बच्चे को कपड़े से बाँधकर पत्तों की तलाश में वन-वन डोलती आदिवासी युवतियाँ। उन आदिवासी युवतियों के फूले हुए पाँव और

इन पत्थर तोड़ती पहाड़िनों के हाथों में पड़े ठाठे[16], एक ही कहानी कह रहे थे कि आम ज़िंदगियों की कहानी हर जगह एक-सी है कि सारी मलाई एक तरफ़; सारे आँसू, अभाव, यातना और वंचना एक तरफ़!

और तभी मेरी सहयात्री मणि और जितेन मुझे खोजते-खोजते वहाँ तक आ गए थे। मुझे गमगीन देख जितेन कहने लगा, "मैडम, ये मेरे देश की आम जनता है, इन्हें तो आप कहीं भी देख लेंगी...आप इन्हें नहीं, पहाड़ों की सुंदरता को देखिए...जिसके लिए आप इतने पैसे खर्च करके आई हैं।"

'ये देश की आम जनता ही नहीं, जीवन का प्रति संतुलन भी हैं। ये 'वेस्ट एट रिपेईंग'[17] हैं। कितना कम लेकर ये समाज को कितना अधिक वापस लौटा देती हैं', मन ही मन सोचा मैंने। हम वापस जीप की ओर मुड़ने लगे कि तभी मैंने देखा—वे श्रम-सुंदरियाँ किसी बात पर इस कदर खिलखिलाकर हँस पड़ी थीं कि जीवन लहरा उठा था और वह सारा खंडहर ताजमहल बन गया था।

× × × ×

हम लगातार ऊँचाईयों पर चढ़ते जा रहे थे। जितेन बता रहा था, अब हम हर मोड़ पर हेयर पिन बेंट लेंगे और तेज़ी से ऊँचाई पर चढ़ते जाएँगे। हेयर पिन बेंट के ठीक पहले एक पड़ाव पर देखा सात-आठ वर्ष की उम्र के ढेर सारे पहाड़ी बच्चे स्कूल से लौट रहे थे और हमसे लिफ्ट माँग रहे थे। जितेन ने बताया हर दिन तीन-साढ़े तीन किलोमीटर की पहाड़ी चढ़ाई चढ़कर ये बच्चे स्कूल जाते हैं।

"क्या स्कूली बस नहीं?"

मणि के पूछने पर जितेन हँस पड़ा, "मैडम यह मैदानी नहीं पहाड़ी इलाका है। मैदान की तरह यहाँ कोई भी आपको चिकना वर्बीला[18] नहीं मिलेगा। यहाँ जीवन कठोर है। नीचे तराई में ले-देकर एक ही स्कूल है। दूर-दूर से बच्चे उसी स्कूल में जाते हैं। और सिर्फ़ पढ़ते ही नहीं हैं, इनमें से अधिकांश बच्चे शाम के समय अपनी माँओं के साथ मवेशियों को चराते हैं, पानी भरते हैं, जंगल से लकड़ियों के भारी-भारी गट्ठर ढोते हैं। खुद मैंने भी ढोए थे।"

खतरा अब धीरे-धीरे बढ़ने लगा था। रास्ते और भी सँकरे होते जा रहे थे। कई बार लगता जैसे रास्तों को इंच टेप से नापकर एक जीप जितना ही चौड़ा बनाया गया है कि

16. हाथ में पड़ने वाली गाठें या निशान 17. कम लेना और ज्यादा देना 18. बढ़े हुए पेट वाला

ज़रा भी संतुलन बिगड़े, इंच भर भी जीप इधर-उधर खिसके तो हम सीधे घाटियों में! इन रास्तों पर जगह-जगह लिखी चेतावनियाँ भी हमें खतरों के प्रति सजग कर रही थीं। सामने ही लिखा था-'धीरे चलाएँ, घर में बच्चे आपका इंतज़ार कर रहे हैं।

थोड़ा और आगे बढ़े कि फिर एक चेतावनी-'वी केयर, मैन इटर अराउंड।' पर हमें नरभक्षी जानवर नहीं, दूध देने वाले याक दिखे...काले-काले ढेर सारे याक। पहाड़ों पर गिरती बर्फ़ से प्राकृतिक ढंग से रक्षा करने वाले घने-घने बालों वाले याक।

सूरज ढलने लगा था। हमने देखा कुछ पहाड़ी औरतें गायों को चराकर वापस लौट रही थीं। कुछ के सिर पर लकड़ियों के भारी-भरकम गट्ठर थे। ऊपर आसमान फिर धुंध और बादलों से घिरा हुआ था। उतरती संध्या में जीप अब चाय के बागानों से गुज़र रही थी कि फिर एक दृश्य ने मुझे खींचा...नीचे चाय के हरे-भरे बागानों में कई युवतियाँ बोकु पहने (सिक्किमी परिधान) चाय की पत्तियाँ तोड़ रही थीं। नदी की तरह उफ़ान लेता उनका यौवन और श्रम से दमकता गुलाबी चेहरा। एक युवती ने चटक लाल रंग का बोकु पहन रखा था। सघन हरियाली के बीच चटक लाल रंग डूबते सूरज की स्वर्णिम और सात्विक आभा में कुछ इस कदर इंद्रधनुषी छटा बिखेर रहा था कि मंत्रमुग्ध-सी मैं चीख पड़ी थी!...इतना अधिक सौंदर्य मेरे लिए असह्य था।

यूमथांग पहुँचने के लिए हमें रात भर लायुंग में पड़ाव लेना था। गगनचुंबी पहाड़ों के तल में साँस लेती एक नन्हीं-सी शांत बस्ती लायुंग। सारी दौड़-धूप से दूर ज़िंदगी जहाँ निश्चिंत सो रही थी।

उसी लायुंग में हम ठहरे थे। तिस्ता नदी के तीर पर बसे लकड़ी के एक छोटे-से घर में। मुँह-हाथ धोकर मैं तुरंत ही तिस्ता नदी के किनारे बिखरे पत्थरों पर बैठ गई थी। सामने बहुत ऊपर से बहता झरना नीचे कल-कल बहती तिस्ता में मिल रहा था। मद्धिम-मद्धिम[19] हवा बह रही थी। पेड़-पौधे झूम रहे थे। गहरे बादलों की परत ने चाँद को ढक रखा था...बाहर परिंदे और लोग अपने घरों को लौट रहे थे। वातावरण में अद्भुत शांति थी। मंदिर की घंटियों-सी...घुँघरुओं की रुनझुनाहट-सी। आँखें अनायास भर आईं। ज्ञान का नन्हा-सा बोधिसत्व जैसे भीतर उगने लगा...वहीं सुख शांति और सुकून है जहाँ अखंडित संपूर्णता है-पेड़, पौधे, पशु, और आदमी-सब अपनी-अपनी लय, ताल और गति में हैं। हमारी पीढ़ी ने प्रकृति की इस लय, ताल और गति से खिलवाड़ कर अक्षम्य अपराध किया है। हिमालय अब मेरे लिए कविता ही नहीं, दर्शन बन गया था।

19. धीमी, हलकी

अँधेरा होने के पहले ही किसी प्रकार डगमगाती शिलाओं और पत्थरों से होकर तिस्ता नदी की धार तक पहुँची। बहते पानी को अपनी अंजुलि में भरा तो अतीत भीतर धड़कने लगा...स्मृति में कौंधा...हमारे यहाँ जल को हाथ में लेकर संकल्प किया जाता है...क्या संकल्प करूँ? पर मैं संकल्प की स्थिति में नहीं थी...भीतर थी एक प्रार्थना...एक कमज़ोर व्यक्ति की प्रार्थना...भीतर का सारा हलाहल[20], सारी तामसिकताएँ बह जाएँ...इसी बहती धारा में! रात धीरे-धीरे गहराने लगी। हिमालय ने काला कंबल ओढ़ लिया था। जितेन ने लकड़ी के बने खिलौने से उस छोटे से गेस्ट हाऊस में गाने की तेज़ धुन पर जब अपने संगी-साथियों के साथ नाचना शुरू किया तो देखते-देखते एक आदिम रात्रि की महक से परियों की कहानी-सी मोहक वह रात महक उठी। मस्ती और मादकता का ऐसा संक्रमण[21] हुआ कि एक-एक कर हम सभी सैलानी गोल-गोल घेरा बनाकर नाचने लगे। मेरी पचास वर्षीय सहेली मणि ने कुमारियों को भी मात करते हुए वो जानदार नृत्य प्रस्तुत किया कि हम सब अवाक् उसे ही देखते रह गए। कितना आनंद भरा था उसके भीतर! कहाँ से आता था इतना आनंद?

लायुंग की सुबह! बेहद शांत और सुरम्य। तिस्ता नदी की शांत धारा के समान ही कल-कल कर बहती हुई। अधिकतर लोगों की जीविका का साधन पहाड़ी आलू, धान की खेती और दारू का व्यापार। सुबह मैं अकेले ही टहलने निकल गई थी। मैंने उम्मीद की थी कि यहाँ मुझे बर्फ़ मिलेगी पर अप्रैल के शुरुआती महीने में यहाँ बर्फ़ का एक कतरा भी नहीं था। यद्यपि हम सी लेवल[22] से 14000 फीट की ऊँचाई पर थे। मैं बर्फ़ देखने के लिए बैचेन थी...हम मैदानों से आए लोगों के लिए बर्फ़ से ढके पहाड़ किसी जन्नत से कम नहीं होते।

वहीं पर घूमते हुए एक सिक्किमी नवयुवक ने मुझे बताया कि प्रदूषण के चलते स्नो-फॉल लगातार कम होती जा रही है पर यदि मैं 'कटाओ' चली जाऊँ तो मुझे वहाँ शर्तिया बर्फ़ मिल जाएगी...कटाओ यानी भारत का स्विट्ज़रलैंड! कटाओ जो कि अभी तक टूरिस्ट स्पॉट नहीं बनने के कारण सुर्खियों[23] में नहीं आया था, और अपने प्राकृतिक स्वरूप में था। कटाओ जो लायुंग से 500 फीट ऊँचाई पर था और करीब दो घंटे का सफ़र था। वह नवयुवक मुझसे बतिया रहा था और उसकी घरवाली अपने छोटे से लकड़ी के घर के बाहर हमें उत्सुकतापूर्वक देख रही थी कि तभी गाय ने आकर बाहर थैले में रखा उसका महुआ गुडुप[24] कर लिया था। मीठी झिड़कियाँ देकर उसने गाय को भगा दिया था।

उम्मीद, आवेश और उत्तेजना के साथ अब हमारा सफ़र कटाओ की ओर। कटाओ का रास्ता और खतरनाक था अैर उस पर धुंध और बारिश। जितेन लगभग अंदाज़ से गाड़ी

20. विष, ज़हर 21. मिलन, संयोग 22. तल, स्तर 23. चर्चा में आना 24. निगल लिया

चला रहा था। पहाड़, पेड़, आकाश, घाटियाँ सब पर बादलों की परत। सब कुछ बादलमय। बादलों को चीरकर निकलती हमारी जीप। खतरनाक रास्तों के अहसास ने हमें मौन कर दिया था। और उस पर बारिश। एक चूक और सब खलास...साँस रोके हम धुंध और फिसलन भरे रास्ते पर सँभल-सँभलकर आगे बढ़ती जीप को देख रहे थे। हमारी साँस लेने की आवाज़ों के सिवाय आस-पास जीवन का कोई पता नहीं था। फिर नज़र पड़ी बड़े-बड़े शब्दों में लिखी एक चेतावनी पर...'इफ यू आर मैरिड, डाइवोर्स स्पीड।' थोड़ी ही दूर आगे बढ़े कि फिर एक चेतावनी-'दुर्घटना से देर भली, सावधानी से मौत टली।'

करीब आधे रास्ते बाद धुंध छँटी और साथ ही सृष्टि और हमारे बीच फैला सन्नाटा भी हटा। नार्गे उत्साहित होकर कहने लगा, "कटाओ हिंदुस्तान का स्विट्ज़रलैंड है।" मेरी सहेली मणि स्विट्ज़रलैंड घूम आई थी, उसने तुरंत प्रतिवाद किया-"नहीं स्विट्ज़रलैंड भी इतनी ऊँचाई पर नहीं है और न ही इतना सुंदर।"

हम कटाओ के करीब आ रहे थे क्योंकि दूर से ही बर्फ़ से ढके पहाड़ दिखने लगे थे। पास में जो पर्वत थे वे आधे हरे-काले दिख रहे थे। लग रहा था जैसे किसी ने इन पहाड़ों पर पाउडर छिड़क दिया हो। कहीं पाउडर बची रह गई हो और कहीं वह धूप में बह गई हो। नार्गे ने उत्तेजित होकर कहा-"देखिए एकदम ताज़ा बर्फ़ है, लगता है रात में गिरी है यह बर्फ़।" थोड़ा और आगे बढ़ने पर अब हमें पूरी तरह बर्फ़ से ढके पहाड़ दिख रहे थे। साबुन के झाग की तरह सब ओर गिरी हुई बर्फ़। मैं जीप की खिड़की से मुंडी निकाल-निकाल दूर-दूर तक देख रही थी...चाँदी से चमकते पहाड़!

एकाएक जितेन ने पूछा, "कैसा लग रहा है?"

मैंने जवाब दिया-"राम रोछो"[25]।

वह उछल पड़ा-"अरे, यह नेपाली बोली कहाँ से सीखी?" अपनी भाषा के गर्व से उसकी आँखें चमक उठी, चेहरा इतराने लगा। और तभी किसी चमत्कार की तरह हलकी-हलकी बर्फ़, एकदम महीन-महीन मोती की तरह गिरने लगी!

"तिम्रो माया सैंधै मलाई सताऊँछ", (तुम्हारा प्यार मुझे सदैव रुलाता है।) चहुँ ओर बिखरी यह बर्फ़ीली सुंदरता जितेन के मन पर भी थाप लगाने लगी थी। प्रेम की झील में तैरते हुए झूम-झूम गाने लगा था वह।

हम सभी सैलानी अब जीप से उतर कर बर्फ़ पर कूदने लगे थे। यहाँ बर्फ़ सर्वाधिक थी। घुटनों तक नरम-नरम बर्फ़। ऊपर आसमान और बर्फ़ से ढके पहाड़ एक हो रहे थे। कई सैलानी बर्फ़ पर लेटकर हर लम्हे की रंगत को कैमरे में कैद करने में लगे थे।

25. अच्छा है

मेरे पाँव झन-झन करने लगे थे। पर मन वृंदावन हो रहा था। भीतर जैसे देवता जाग गए थे। ख्वाहिश हुई कि मैं भी बर्फ़ पर लेटकर इस बर्फ़ीली जन्नत को जी भर देखूँ। पर मेरे पास बर्फ़ पर पहनने वाले लंबे-लंबे जूते नहीं थे। मैंने चाहा कि किराए पर ले लूँ पर कटाओ, यूमथांग और झांगू लेक की तरह टूरिस्ट स्पॉट[26] नहीं था, इस कारण यहाँ झांगू की तरह दुनिया भर की तो क्या एक भी दुकान नहीं थी। खैर...

दनादन फ़ोटो खिंचवाने की बजाय मैं उस सारे परिदृश्य को अपने भीतर लगातार खींच रही थी जिससे महानगर के डार्क रूम में इसे फिर-फिर देख सकूँ। संपूर्णता के उन क्षणों में यह हिमशिखर मुझे मेरे आध्यात्मिक अतीत से जोड़ रहे थे। शायद ऐसी ही विभोर कर देने वाली दिव्यता के बीच हमारे ऋषि-मुनियों ने वेदों की रचना की होगी। जीवन सत्यों को खोजा होगा। 'सर्वे भवंतु सुखिन:' का महामंत्र पाया होगा। अंतिम संपूर्णता का प्रतीक वह सौंदर्य ऐसा कि बड़ा से बड़ा अपराधी भी इसे देख ले तो क्षणों के लिए ही सही 'करुणा का अवतार' बुद्ध बन जाए।

और तभी दिमाग में कौंधा कि मिल्टन ने ईव की सुंदरता का वर्णन करते हुए लिखा था कि शैतान भी उसे देखकर ठगा-सा रह जाता था और दूसरों का अमंगल करने की वृत्ति भूल जाता था। मैंने मणि से पूछा–"क्या उसने पढ़ी है मिल्टन की वह कविता?"

पर मणि उस समय किसी दूसरे ही सवाल से जूझ रही थी। वह एकाएक दार्शनिकों की तरह कहने लगी, "ये हिमशिखर जल स्तंभ हैं, पूरे एशिया के। देखो, प्रकृति भी किस नायाब ढंग से सारा इंतज़ाम करती है। सर्दियों में बर्फ़ के रूप में जल संग्रह कर लेती है और गर्मियों में पानी के लिए जब त्राहि-त्राहि मचती है तो ये ही बर्फ़ शिलाएँ पिघल-पिघल जलधारा बन हमारे सूखे कंठों को तरावट पहुँचाती हैं। कितनी अद्भुत व्यवस्था है जल संचय की!"

मणि ने अभिभूत हो माथा नवाया–"जाने कितना ऋण है हम पर इन नदियों का, हिम शिखरों का।" 'संसार कितना सुंदर।' स्वप्न जगाते उन लम्हों में मैंने सोचा। पर तभी उदासी की एक झीनी-सी परत मुझ पर छा गई। उड़ते बादलों की तरह पत्थर तोड़ती उन पहाड़िनों का खयाल आ गया।

आत्मा की अनंत परतों को छीलता हुआ हमारा यह सफ़र थोड़ा और आगे बढ़ा कि तभी देखा–इक्की-दुक्की फ़ौजी छावनियाँ। ध्यान आया यह बॉर्डर एरिया है। थोड़ी दूरी पर ही चीन की सीमा है। एक फ़ौजी से मैंने कहा–"इतनी कड़कड़ाती ठंड में (उस समय तापमान माइनस 15 डिग्री सेल्यिसय था) आप लोगों को बहुत तकलीफ़ होती होगी।" वह

26. भ्रमण-स्थल

हँस दिया—एक उदास हँसी, "आप चैन की नींद सो सकें, इसीलिए तो हम यहाँ पहरा दे रहे हैं।"

'फेरी भेटुला' (फिर मिलेंगे) कहते हुए जितेन ने जीप चालू कर दी। थोड़ी देर बाद ही फिर दिखी एक फ़ौजी छावनी जिस पर लिखा था—'वी गिव अवर टुडे फॉर योर टुमारो।'

मन उदास हो गया। भीतर कुछ पिघलने लगा। महानगर में रहते हुए कभी ध्यान ही नहीं आया कि जिन बर्फ़ीले इलाकों में वैसाख के महीने में भी पाँच मिनट में ही हम ठिठुरने लगे थे, हमारे ये जवान पौष और माघ में भी जबकि सिवाय पेट्रोल के सब कुछ जम जाता है, तैनात रहते हैं। और जिन सँकरे घुमावदार और खतरनाक रास्तों से गुज़रने भर में हमारे प्राण काँप उठते हैं उन रास्तों को बनाने में जाने कितनों के जीवन अपनी मीआद के पूर्व ही खत्म हो गए हैं। मेरे लिए यह यात्रा सचमुच ही एक खोज यात्रा थी। पूरा सफ़र चेतना और अंतरात्मा में हलचल मचाने वाला था। बहरहाल...अब हम लायुंग वापस लौटकर फिर यूमथांग की ओर। जितेन कुछ दिन पूर्व ही नेपाल से ताज़ा-ताज़ा आया था।

यूमथांग की घाटियों में एक नया आकर्षण और जुड़ गया था...ढेरों-ढेर प्रियुता और रूडोडेंड्रो के फूल। जितेन बताने लगा, "बस पंद्रह दिनों में ही देखिएगा पूरी घाटी फूलों से इस कदर भर जाएगी कि लगेगा फूलों की सेज रखी हो।"

यहाँ रास्ते अपेक्षाकृत चौड़े थे, इस कारण खतरों का अहसास कम था। इन घाटियों में कई बंदर भी दिखे। कुछ अकेले तो कुछ अपने बाल-बच्चों के साथ।

बहरहाल...घाटियों, वादियों, पहाड़ों और बादलों की आँख-मिचौली दिखाती, पहाड़ी कबूतरों को उड़ाती हमारी जीप जब यूमथांग पहुँची तो हम थोड़े निराश हुए। बर्फ़ से ढके कटाओ के हिम-शिखरों को देखने के बाद यूमथांग थोड़ा फीका लगा और यह भी अहसास हुआ कि मंज़िल से कहीं ज़्यादा रोमांचक होता है मंज़िल तक का सफ़र।

बहरहाल यूमथांग में चिप्स बेचती एक सिक्किमी युवती से मैंने पूछा—"क्या तुम सिक्किमी हो?"

"नहीं मैं इंडियन हूँ," उसने जवाब दिया।

सुनकर बहुत अच्छा लगा। सिक्किम के लोग भारत में मिलकर बहुत खुश हैं। जब सिक्किम स्वतंत्र रजवाड़ा था तब टूरिस्ट उद्योग इतना नहीं फला-फूला था। हर एक सिक्किमी भारतीय आबोहवा में इस कदर घुलमिल गया है कि लगता ही नहीं, कभी सिक्किम भारत में नहीं था।

जीप में बैठने को हुए कि एक पहाड़ी कुत्ते ने रास्ता काट दिया। मणि ने बताया, "ये पहाड़ी कुत्ते हैं। ये भौंकते नहीं हैं। ये सिर्फ़ चाँदनी रात में ही भौंकते हैं।"

"क्या?" विस्मय और अविश्वास से मैं उसे सुनती रही। क्या समुद्र की तरह कुत्तों पर भी पूर्णिमा की चाँदनी कामनाओं का ज़्वार-भाटा जगाती है! खैर...।

लौटती यात्रा में जीप में भी जितेन हमें रकम-रकम की जानकारियाँ देता रहा "मैडम, यहाँ एक पत्थर है जिस पर गुरुनानक के फुट प्रिंट हैं। कहते हैं यहाँ गुरुनानक की थाली से थोड़े से चावल छिटक कर बाहर गिर गए थे। जिस जगह चावल छिटक कर गिरे थे, वहाँ चावल की खेती होती है।"

करीब तीन-चार किलोमीटर बाद ही उसने फिर उँगली दिखाई, "मैडम इसे खेदुम कहते हैं। यह पूरा लगभग एक किलोमीटर का एरिया है। यहाँ देवी-देवताओं का निवास है, यहाँ जो गंदगी फैलाएगा, वह मर जाएगा।"

"तुम लोग पहाड़ों पर गंदगी नहीं फैलाते...?"

उसने जीभ निकालते हुए कहा—"नहीं मैडम, पहाड़, नदी, झरने...हम इनकी पूजा करते हैं, इन्हें गंदा करेंगे तो हम मर जाएँगे।"

"तभी गैंगटॉक इतना सुंदर है", मैंने कहा।

"गैंगटॉक नहीं मैडम गंतोक कहिए। इसका असली नाम गंतोक है। गंतोक का मतलब है पहाड़...।"

मैं कुछ पूछती कि वह फिर चालू हो गया, "मैडम यूमथांग भी पहले टूरिस्ट स्पॉट नहीं था। यह तो सिक्किम जब भारत में मिला उसके भी कई वर्षों बाद भारतीय आर्मी के कप्तान शेखर दत्ता के दिमाग में आया कि यहाँ सिर्फ़ फ़ौजियों को रखकर क्या होगा, घाटियों के बीच रास्ते निकालकर इसे टूरिस्ट स्पॉट बनाया जा सकता है। आप देखिए, अभी भी रास्ते बन रहे हैं।"

'हाँ, रास्ते अभी भी बन ही रहे हैं। नए-नए स्थानों की खोज अभी भी जारी है। शायद मनुष्य की इसी असमाप्त खोज का नाम सौंदर्य है'...मन-ही-मन मैं कहती हूँ।

जीप आगे बढ़ने लगती है।

प्रश्न-अभ्यास

1. झिलमिलाते सितारों की रोशनी में नहाया गंतोक लेखिका को किस तरह सम्मोहित कर रहा था?
2. गंतोक को 'मेहनतकश बादशाहों का शहर' क्यों कहा गया?
3. कभी श्वेत तो कभी रंगीन पताकाओं का फहराना किन अलग-अलग अवसरों की ओर संकेत करता है?
4. जितेन नार्गे ने लेखिका को सिक्किम की प्रकृति, वहाँ की भौगोलिक स्थिति एवं जनजीवन के बारे में क्या महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ दीं, लिखिए।

5. लोंग स्टॉक में घूमते हुए चक्र को देखकर लेखिका को पूरे भारत की आत्मा एक-सी क्यों दिखाई दी?
6. जितेन नार्गे की गाइड की भूमिका के बारे में विचार करते हुए लिखिए कि एक कुशल गाइड में क्या गुण होते हैं?
7. इस यात्रा-वृत्तांत में लेखिका ने हिमालय के जिन-जिन रूपों का चित्र खींचा है, उन्हें अपने शब्दों में लिखिए।
8. प्रकृति के उस अनंत और विराट स्वरूप को देखकर लेखिका को कैसी अनुभूति होती है?
9. प्राकृतिक सौंदर्य के अलौकिक आनंद में डूबी लेखिका को कौन-कौन से दृश्य झकझोर गए?
10. सैलानियों को प्रकृति की अलौकिक छटा का अनुभव करवाने में किन-किन लोगों का योगदान होता है, उल्लेख करें।
11. "कितना कम लेकर ये समाज को कितना अधिक वापस लौटा देती हैं।" इस कथन के आधार पर स्पष्ट करें कि आम जनता की देश की आर्थिक प्रगति में क्या भूमिका है?
12. आज की पीढ़ी द्वारा प्रकृति के साथ किस तरह का खिलवाड़ किया जा रहा है। इसे रोकने में आपकी क्या भूमिका होनी चाहिए।
13. प्रदूषण के कारण स्नोफॉल में कमी का जिक्र किया गया है? प्रदूषण के और कौन-कौन से दुष्परिणाम सामने आए हैं, लिखें।
14. 'कटाओ' पर किसी भी दुकान का न होना उसके लिए वरदान है। इस कथन के पक्ष में अपनी राय व्यक्त कीजिए?
15. प्रकृति ने जल संचय की व्यवस्था किस प्रकार की है?
16. देश की सीमा पर बैठे फ़ौजी किस तरह की कठिनाइयों से जूझते हैं? उनके प्रति हमारा क्या उत्तरदायित्व होना चाहिए?

1056CH05

3
मैं क्यों लिखता हूँ?

अज्ञेय

मैं क्यों लिखता हूँ? यह प्रश्न बड़ा सरल जान पड़ता है पर बड़ा कठिन भी है। क्योंकि इसका सच्चा उत्तर लेखक के आंतरिक जीवन के स्तरों से संबंध रखता है। उन सबको संक्षेप में कुछ वाक्यों में बाँध देना आसान तो नहीं ही है, न जाने सम्भव भी है या नहीं? इतना ही किया जा सकता है कि उनमें से कुछ का स्पर्श किया जाए—विशेष रूप से ऐसों का जिन्हें जानना दूसरों के लिए उपयोगी हो सकता है।

एक उत्तर तो यह है कि मैं इसीलिए लिखता हूँ कि स्वयं जानना चाहता हूँ कि क्यों लिखता हूँ-लिखे बिना इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिल सकता है। वास्तव में सच्चा उत्तर यही है। लिखकर ही लेखक उस आभ्यंतर[1] विवशता को पहचानता है जिसके कारण उसने लिखा—और लिखकर ही वह उससे मुक्त हो जाता है। मैं भी उस आंतरिक विवशता से मुक्ति पाने के लिए, तटस्थ होकर उसे देखने और पहचान लेने के लिए लिखता हूँ। मेरा विश्वास है कि सभी कृतिकार—क्योंकि सभी लेखक कृतिकार नहीं होते; न उनका सब लेखन ही कृति होता है—सभी कृतिकार इसीलिए लिखते हैं। यह ठीक है कि कुछ ख्याति मिल जाने के बाद कुछ बाहर की विवशता से भी लिखा जाता है-संपादकों के आग्रह से, प्रकाशक के तकाजे से, आर्थिक आवश्यकता से। पर एक तो कृतिकार हमेशा अपने सम्मुख ईमानदारी से यह भेद बनाए रखता है कि कौन-सी कृति भीतरी प्रेरणा का फल है, कौन-सा लेखन बाहरी दबाव का, दूसरे यह भी होता है कि बाहर का दबाव वास्तव में दबाव नहीं रहता, वह मानो भीतरी उन्मेष[2] का निमित्ति[3] बन जाता है।

1. भीतर का, अंदरुनी 2. प्रकाश, दीप्ति 3. कारण

यहाँ पर कृतिकार के स्वभाव और आत्मानुशासन का महत्त्व बहुत होता है। कुछ ऐसे आलसी जीव होते हैं कि बिना इस बाहरी दबाव के लिख ही नहीं पाते—इसी के सहारे उनके भीतर की विवशता स्पष्ट होती है—यह कुछ वैसा ही है जैसे प्रातःकाल नींद खुल जाने पर कोई बिछौने पर तब तक पड़ा रहे जब तक घड़ी का एलार्म न बज जाए। इस प्रकार वास्तव में कृतिकार बाहर के दबाव के प्रति समर्पित नहीं हो जाता है, उसे केवल एक सहायक यंत्र की तरह काम में लाता है जिससे भौतिक यथार्थ के साथ उसका संबंध बना रहे। मुझे इस सहारे की ज़रूरत नहीं पड़ती लेकिन कभी उससे बाधा भी नहीं होती। उठने वाली तुलना को बनाए रखूँ तो कहूँ कि सबेरे उठ जाता हूँ अपने आप ही, पर अलार्म भी बज जाए तो कोई हानि नहीं मानता।

यह भीतरी विवशता क्या होती है? इसे बखानना बड़ा कठिन है। क्या वह नहीं होती यह बताना शायद कम कठिन होता है। या उसका उदाहरण दिया जा सकता है—कदाचित् वही अधिक उपयोगी होगा। अपनी एक कविता की कुछ चर्चा करूँ जिससे मेरी बात स्पष्ट हो जाएगी।

मैं विज्ञान का विद्यार्थी रहा हूँ, मेरी नियमित शिक्षा उसी विषय में हुई। अणु क्या होता है, कैसे हम रेडियम-धर्मी तत्वों का अध्ययन करते हुए विज्ञान की उस सीढ़ी तक पहुँचे जहाँ अणु का भेदन संभव हुआ, रेडियम-धर्मिता के क्या प्रभाव होते हैं—इन सबका पुस्तकीय या सैद्धांतिक ज्ञान तो मुझे था। फिर जब वह हिरोशिमा में अणु-बम गिरा, तब उसके समाचार मैंने पढ़े; और उसके परवर्ती प्रभावों का भी विवरण पढ़ता रहा। इस प्रकार उसके प्रभावों का ऐतिहासिक प्रमाण भी सामने आ गया। विज्ञान के इस दुरुपयोग के प्रति बुद्धि का विद्रोह स्वाभाविक था, मैंने लेख आदि में कुछ लिखा भी पर अनुभूति के स्तर पर जो विवशता होती है वह बौद्धिक पकड़ से आगे की बात है और उसकी तर्क संगति भी अपनी अलग होती है। इसलिए कविता मैंने इस विषय में नहीं लिखी। यों युद्धकाल में भारत की पूर्वीय सीमा पर देखा था कि कैसे सैनिक ब्रह्मपुत्र में बम फेंक कर हज़ारों मछलियाँ मार देते थे। जबकि उन्हें आवश्यकता थोड़ी-सी होती थी, और जीव के इस अपव्यय से जो व्यथा भीतर उमड़ी थी, उससे एक सीमा तक अणु-बम द्वारा व्यर्थ जीव-नाश का अनुभव तो कर ही सका था।

जापान जाने का अवसर मिला, तब हिरोशिमा भी गया और वह अस्पताल भी देखा जहाँ रेडियम-पदार्थ से आहत लोग वर्षों से कष्ट पा रहे थे। इस प्रकार प्रत्यक्ष अनुभव भी हुआ—पर अनुभव से अनुभूति गहरी चीज़ है, कम-से-कम कृतिकार के लिए। अनुभव तो घटित का होता है, पर अनुभूति संवेदना और कल्पना के सहारे उस सत्य को आत्मसात् कर लेती है जो वास्तव में कृतिकार के साथ घटित नहीं हुआ है। जो आँखों के सामने

नहीं आया, जो घटित के अनुभव में नहीं आया, वही आत्मा के सामने ज्वलंत प्रकाश में आ जाता है, तब वह अनुभूति-प्रत्यक्ष हो जाता है।

तो हिरोशिमा में सब देखकर भी तत्काल कुछ लिखा नहीं, क्योंकि इसी अनुभूति प्रत्यक्ष की कसर थी। फिर एक दिन वहीं सड़क पर घूमते हुए देखा कि एक जले हुए पत्थर पर एक लंबी उजली छाया है–विस्फोट के समय कोई वहाँ खड़ा रहा होगा और विस्फोट से बिखरे हुए रेडियम-धर्मी पदार्थ की किरणें उसमें रुद्ध[4] हो गई होंगी–जो आस-पास से आगे बढ़ गईं उन्होंने पत्थर को झुलसा दिया, जो उस व्यक्ति पर अटकीं उन्होंने उसे भाप बनाकर उड़ा दिया होगा। इस प्रकार समूची ट्रेजडी जैसे पत्थर पर लिखी गई।

4. बंद हो गई, फँस गई

उस छाया को देखकर जैसे एक थप्पड़-सा लगा। अवाक् इतिहास जैसे भीतर कहीं सहसा एक जलते हुए सूर्य-सा उग आया और डूब गया। मैं कहूँ कि उस क्षण में अणु-विस्फोट मेरे अनुभूति-प्रत्यक्ष में आ गया—एक अर्थ में मैं स्वयं हिरोशिमा के विस्फोट का भोक्ता बन गया।

इसी में से वह विवशता जागी। भीतर की आकुलता बुद्धि के क्षेत्र से बढ़कर संवेदना के क्षेत्र में आ गई...फिर धीरे-धीरे मैं उससे अपने को अलग कर सका और अचानक एक दिन मैंने हिरोशिमा पर कविता लिखी—जापान में नहीं, भारत लौटकर, रेलगाड़ी में बैठे-बैठे।

यह कविता अच्छी है या बुरी; इससे मुझे मतलब नहीं है। मेरे निकट वह सच है, क्योंकि वह अनुभूति-प्रसूत[5] है, यही मेरे निकट महत्त्व की बात है।

प्रश्न-अभ्यास

1. लेखक के अनुसार प्रत्यक्ष अनुभव की अपेक्षा अनुभूति उनके लेखन में कहीं अधिक मदद करती है, क्यों?
2. लेखक ने अपने आपको हिरोशिमा के विस्फोट का भोक्ता कब और किस तरह महसूस किया?
3. **मैं क्यों लिखता हूँ?** के आधार पर बताइए कि–
   (क) लेखक को कौन-सी बातें लिखने के लिए प्रेरित करती हैं?
   (ख) किसी रचनाकार के प्रेरणा स्रोत किसी दूसरे को कुछ भी रचने के लिए किस तरह उत्साहित कर सकते हैं?
4. कुछ रचनाकारों के लिए आत्मानुभूति/स्वयं के अनुभव के साथ-साथ बाह्य दबाव भी महत्त्वपूर्ण होता है। ये बाह्य दबाव कौन-कौन से हो सकते हैं?
5. क्या बाह्य दबाव केवल लेखन से जुड़े रचनाकारों को ही प्रभावित करते हैं या अन्य क्षेत्रों से जुड़े कलाकारों को भी प्रभावित करते हैं, कैसे ?
6. हिरोशिमा पर लिखी कविता लेखक के अंत: व बाह्य दोनों दबाव का परिणाम है यह आप कैसे कह सकते हैं?
7. हिरोशिमा की घटना विज्ञान का भयानकतम दुरुपयोग है। आपकी दृष्टि में विज्ञान का दुरुपयोग कहाँ-कहाँ और किस तरह से हो रहा है।
8. एक संवेदनशील युवा नागरिक की हैसियत से विज्ञान का दुरुपयोग रोकने में आपकी क्या भूमिका है?

5. उत्पन्न

सन् 1959 में प्रकाशित **अरी ओ करुणा प्रभामय** काव्य-संग्रह में संकलित अज्ञेय की हिरोशिमा कविता यहाँ दी जा रही है–

हिरोशिमा

एक दिन सहसा
सूरज निकला
अरे क्षितिज पर नहीं,
नगर के चौक :
धूप बरसी
पर अंतरिक्ष से नहीं,
फटी मिट्टी से।

छायाएँ मानव-जन की
दिशाहीन
सब ओर पड़ीं–वह सूरज
नहीं उगा था पूरब में, वह
बरसा सहसा
बीचों-बीच नगर के :
काल-सूर्य के रथ के
पहियों के ज्यों अरे टूट कर
बिखर गए हों
दसों दिशा में।

कुछ क्षण का वह उदय-अस्त!
केवल एक प्रज्वलित क्षण की
दृश्य सोख लेने वाली दोपहरी।
फिर?
छायाएँ मानव-जन की
नहीं मिटीं लंबी हो-हो कर :
मानव ही सब भाप हो गए।
छायाएँ तो अभी लिखी हैं
झुलसे हुए पत्थरों पर
उजड़ी सड़कों की गच पर।

मानव का रचा हुआ सूरज
मानव को भाप बनाकर सोख गया।
पत्थर पर लिखी हुई यह
जली हुई छाया
मानव की साखी है।

लेखक-परिचय

शिवपूजन सहाय

शिवपूजन सहाय का जन्म सन् 1893 में गाँव उनवाँस, ज़िला भोजपुर (बिहार) में हुआ। उनके बचपन का नाम भोलानाथ था। दसवीं की परीक्षा पास करने के बाद उन्होंने बनारस की अदालत में नकलनवीस की नौकरी की। बाद में वे हिंदी के अध्यापक बन गए। असहयोग आंदोलन के प्रभाव से उन्होंने सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। शिवपूजन सहाय अपने समय के लेखकों में बहुत लोकप्रिय और सम्मानित व्यक्ति थे। उन्होंने **जागरण**, **हिमालय**, **माधुरी**, **बालक** आदि कई प्रतिष्ठित पत्रिकाओं का संपादन किया। इसके साथ ही वे हिंदी की प्रतिष्ठित पत्रिका **मतवाला** के संपादक-मंडल में थे। सन् 1963 में उनका देहांत हो गया।

वे मुख्यत: गद्य के लेखक थे। **देहाती दुनिया**, **ग्राम सुधार**, **वे दिन वे लोग**, **स्मृतिशेष** आदि उनकी दर्जन भर गद्य-कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं। **शिवपूजन रचनावली** के चार खंडों में उनकी संपूर्ण रचनाएँ प्रकाशित हैं। उनकी रचनाओं में लोकजीवन और लोकसंस्कृति के प्रसंग सहज ही मिल जाते हैं।

मधु कांकरिया

मधु कांकरिया का जन्म सन् 1957 में कोलकाता में हुआ। उन्होंने कोलकाता विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में एम.ए. किया, साथ ही कंप्यूटर एप्लीकेशन में डिप्लोमा भी।

उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—**पत्ताखोर** (उपन्यास), **सलाम आखिरी, खुले गगन के लाल सितारे, बीतते हुए, अंत में ईशु** (कहानी-संग्रह)। उन्होंने कई सुंदर यात्रा-वृत्तांत भी लिखे हैं। मधु कांकरिया की रचनाओं में विचार और संवेदना की नवीनता मिलती है। समाज में व्याप्त अनेक ज्वलंत समस्याएँ जैसे—अप संस्कृति, महानगर की घुटन और असुरक्षा के बीच युवाओं में बढ़ती नशे की आदत, लालबत्ती इलाकों की पीड़ा आदि उनकी रचनाओं के विषय रहे हैं।

अज्ञेय

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' का जन्म सन् 1911 में उ.प्र. के देवरिया जिले के कसिया (कुशीनगर) इलाके में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा जम्मू-कश्मीर में हुई और बी.एस.सी. लाहौर से की। क्रांतिकारी आंदोलन में भाग लेने के कारण अज्ञेय को जेल भी जाना पड़ा।

साहित्य एवं पत्रकारिता को पूर्णतः समर्पित अज्ञेय ने देश-विदेश की अनेक यात्राएँ कीं। उन्होंने कई नौकरियाँ कीं और छोड़ीं। आज़ादी के बाद की हिंदी कविता पर अज्ञेय का व्यापक प्रभाव है। कविता के अलावा उन्होंने कहानी, उपन्यास, यात्रा-वृत्तांत, निबंध, आलोचना आदि अनेक विधाओं में भी लेखन किया है।

उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—**भग्नदूत**, **चिंता**, **अरी ओ करुणा प्रभामय**, **इंद्रधनु रौंदे हुए ये, आँगन के पार द्वार** (काव्य-संग्रह), **शेखर : एक जीवनी**, **नदी के द्वीप** (उपन्यास), **विपथगा**, **शरणार्थी, जयदोल** (कहानी-संग्रह), **त्रिशंकु**, **आत्मनेपद** (निबंध), **अरे यायावर रहेगा याद** (यात्रा-वृत्तांत)। अज्ञेय द्वारा संपादित **तार सप्तक** सहित चार सप्तकों का समकालीन हिंदी कविता के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। *साहित्य अकादेमी* एवं *ज्ञानपीठ* पुरस्कार सहित अज्ञेय को अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से भी पुरस्कृत किया गया। सन् 1987 में उनका देहावसान हो गया।

बौद्धिकता की छाप अज्ञेय के संपूर्ण लेखन में मिलती है। उनके लेखन के मूल में वैयक्तिकता की पहचान की समस्या है।